वैदिक विश्वदृष्टि और आधुनिक विज्ञान : नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय

सच्चिदानन्द मिश्र

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन" इत्यादिभिः वैदिकसूक्तिभिः वैदिकविश्वदृष्टेराधुनिक-विज्ञानस्य च मध्ये सामञ्जस्यं निरूपयन्, विज्ञानं केवलं सूचनां प्रयच्छति, दर्शनं हि प्रज्ञाप्रदातृ इति विलङ्यूराँ वर्यस्य मतमुपस्थापयन्, दर्शनादृतेऽपूर्णं हि विज्ञानं, विज्ञानस्य पूर्णत्वप्रदातृ दर्शनं तावद् औपनिषदं वैदिकं दर्शनमेवेति तर्केण प्रतिष्ठापयत्यस्मिन् लेखे प्रबन्धा।

ज्ञान के मूल में जिज्ञासा और जिज्ञासा के मूल में कुछ एक असमाहित प्रश्न अन्तर्निहित होते हैं। ज्ञान की कोई भी धारा उसकी अपवाद नहीं है। जब से मुनष्य जाति ने इस आश्चर्यजनक अद्भुत संसार में पदार्पण किया है तब से ही कुछेक जिज्ञासुओं, कुछेक प्रश्नों की तरंगे उसके मस्तिष्क में उठती रही हैं और उनका समाधान ढूंढने के लिए मनुष्य जाति का प्रयास आज भी जारी है। ये प्रश्न मूलतः सृष्टिरचना से सम्बन्धित हैं। हम कौन हैं? यह ब्रह्माण्ड क्या है? कैसे उत्पन्न हुआ है? किसने इस विषय को बनाया और क्यों बनाया? यही वे मूलभूत प्रश्न हैं जिनका समाधान ढूंढने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार वैदिक विश्वदृष्टि और भौतिक विज्ञान दोनों के मूल में छुपे प्रश्न प्रायशः एक जैसे ही हैं। यह देखना दिलचस्प होगा कि दोनों के द्वारा दिये गये समाधानों में क्या कोई विरोध है या नहीं, दोनों के द्वारा जो उत्तर प्रस्तुत किया जाता है इन प्रश्नों का आपस में कहीं-कहीं विरोध प्रतीत होता है किन्तु वस्तुतः उनमें कोई भी विरोध नहीं है। **डॉ० राधाकृष्णन** ने कहा है ''अपने वैज्ञानिक स्वरूप में जो सिद्धान्त अधिक क्रान्तिकारी प्रतीत होते हैं, जैसे कि जीवशास्त्र सम्बन्धी विकासवाद का सिद्धान्त एवं भौतिक जगत् में सापेक्षिकता का सिद्धान्त। उन्होंने सर्वसम्मत

दार्शिनिक सिद्धान्त एवं भौतिक जगत् में सापेक्षिकता का प्रत्याख्यान करने के स्थान पर नवीन क्षेत्र में उनका समर्थन ही किया है।'' (भारतीय दर्शन १ पृ०-४३)

जैसा कि **विलड्यूराँ** ने द स्टोरी ऑफ फिलॉसफी में प्रतिपादित किया है कि दर्शन अपने स्वरूप में इन पाँच चीजों को अन्तर्भूत करता है तर्क, सौन्दर्यशास्त्र, नीति, राजनीति और तत्त्वमीमांसा (पृ० २७१ XXVII)। वैदिक विश्वदृष्टि भी इन पाँचों को अन्तर्भूत करती है। यहाँ पर मूलतः तत्त्वमीमांसा को विवेचित करना है। उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान ढूंढने के लिए वैदिक ऋषियों के पास न तो आज जैसे साधन व सुविधाएँ थीं और न तो उन्हें उन साधनों और सुविधाओं की अपेक्षा ही थी। उपलब्ध साधनों में भी अनेक साधनों की अनुपयुक्तता का भान उन्हें हो गया था और इसलिए उन्होंने तर्क की अप्रतिष्ठा बतलायी। आत्मा के ज्ञान के लिए जिन साधनों का सुझाव उन्होंने दिया है वह प्रशंसनीय है। जब वैदिक ऋषि कहते हैं कि **''आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः''** तो उनकी अप्रतिम अचूक मेधा ही इन पंक्तियों में अभिव्यक्ति होती है। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति तर्क से नहीं हो सकती है उसके लिए दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन की आवश्यकता होती है, यही रहस्य उक्त पंक्ति में उद्घाटित है। इन्हीं साधनों से वैदिक ऋषियों ने विश्व का तात्त्विक ज्ञान प्राप्त किया।

भारतीय दर्शन जो कि अनेक सम्प्रदायों में विभक्त है और कम से कम आस्तिक दर्शनों के आचार्य तो अपने सम्प्रदाय को वेदसम्मत बताते हैं और तदनुरूप उद्धरण भी प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः सभी भारतीय दर्शन के सम्प्रदायों के मूलभूत सूत्र वेदों में छुपे हुए हैं। इसलिए वैदिक विश्व दृष्टि एक न होकर अनेक है। कहीं पर 'पतनशील क्रियाशील परमाणुओं के द्वारा विश्वतश्चक्षु, विश्वतोमुख, विश्वतो बाहु और विश्वतस्पात् ईश्वर द्यावापृथिवी को उन्तन्न करता है।' (ऋग्वेद १०.८१.३) ऐसा वर्णन मिलता है तो कहीं पर प्रकृति से समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन प्राप्त होता है (श्वेताश्वर उपनिषत् ४-५), कहीं पर असत् से सत् की उत्पत्ति हुई है (तैत्तिरीय २-७) ऐसा विवेचन मिलता है, तो कहीं पर एक अनन्त ब्रह्म सत् स्वरूप से सृष्टि की उत्पत्ति का विवेचन उपलब्ध होता है (छान्दोग्य) किन्तु जिस पक्ष पर वैदिक दृष्टि आग्रही दिखती है वह दृष्टि। है अनेक में एक की, अनेक देवताओं में एक देववाद की दृष्टि, इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनेकता के बीच में एक सतत् अपरिवर्तित एकता की दृष्टि। उस तत्त्व को वैदिक ऋषियों ने नाम दिया ब्रह्म। जो कि सत् है, ज्ञान है, अनन्त

है और आनन्द है। यह ब्रह्म सम्बन्धी अवधारणा उपनिषदों में परिपोषित और पल्लवित हुई।

उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए वैदिक ऋषियों ने समाधान दिया है कि सब कुछ वह ब्रह्म ही है **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** उससे भिन्न दूसरी वस्तु नहीं है **'नेह नानास्ति किञ्चन'** वह ब्रह्म ही है जिससे कि यह समस्त संसार उत्पन्न होता है, जिसमें निवास करता है और जिसमें लीन हो जाता है। वह अपने आपको ही स्वयं संसार के रूप में करता है। किसी दूसरे कर्त्ता की जरूरत नहीं है। वह स्वयं ही कर्त्ता है स्वयं ही उपादान है, स्वयं ही निमित्त है। वही एक तत्त्व ब्रह्म सत् और असत् दोनों की योनि है। वैदिक ऋषि अपनी भाषा में उन्हीं प्रश्नों को उपस्थित करते हैं 'वह कौन सा वन था, वह कौन सा वृक्ष था जहाँ द्युलोक और पृथ्वीलोक आश्रित हैं,'' मनीषी मन से पूछें, वह कौन है जो भुवनों को धारण करता हुआ स्थित है' (ऋग्वेद १०.८१.४) 'वह कौन सा अधिष्ठान था, कौन सा आरम्भण था, कब हुआ जिससे विश्वकर्मा विश्वतक्षा भूमि हो उत्पन्न करते हैं (१०.८१.२)। 'कौन इस भुवन की नाभि को जानता है?, कौन द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष को जानता है? कौन बृहत् सूर्य के जनित्र को जानता है और चन्द्रमा कहां से उत्पन्न हुआ इसे कौन जानता है,'' (यजुर्वेद ११.६५.२३.५९)। स्वयं उत्तर देते हैं कि 'ब्रह्म ही वह वन था, वह वृक्ष था जिससे द्यावा और पृथ्वी उत्पन्न हुए हैं, मनीषियों मन से कहता हूँ ब्रह्म ही भुवनों का धारण करता हुआ अवस्थित था' (तै० ब्रा० २-८-९-९)। **अथर्ववेद,** में ऋषि कहते हैं 'जो चलता है, गिरता है, स्थित होता है? श्वास लेता है नहीं लेता है, पलक झपकता है और नहीं झपकाता है उसी विश्व रूप ने पृथ्वी को धारण किया है और वह मिलजुल कर एक ही रूप होता है' (अथर्ववेद १०-८-११)। वह वैज्ञानिक दृष्टि ही है जिसके कारण एक तत्त्व को ढूंढने और ज्ञात करने में ऋषि प्रयत्नशील दिखते हैं।

अनेक स्थलों में वैदिक ऋषि संधयापन्न दिखायी पड़ते हैं। लगता है वे सन्देह में हैं, किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। यह उस तत्त्व की दुर्बोधता का ही निदर्शन है जो कि वाणी से परे है, मन से भी अगम्य है। उस तत्त्व के विषय में केनोपनिषद् में बहुत मनोहर कथन है 'वह तत्त्व जानने वालों को अविज्ञात है और न जानने वालों को विज्ञात है' **'अविज्ञातं विजानतां। विज्ञातमविजानताम्** २-३'। इसीलिए अनेकत्र उस परमतत्त्व के विषय में सन्देह भी वैदिक ऋषियों के द्वारा समुपस्थापित किया गया है, क्योंकि सम्पूर्णता में उस परमतत्त्व को जानना दुष्कर है। इसीलिए बार-बार ऋषियों को रूपकों से काम लेना पड़ता है। अपने

ज्ञान की सीमितता उजागर करनी पड़ती है। किन्तु यह उनका अज्ञान नहीं है। एक जगह सुस्पष्ट शब्दों में ऋषि कहता है कि 'मैं इस भुवन की नाभि को जानता हूँ, मैं द्यावापृथ्वी और अन्तरिक्ष को जानता हूँ, बृहत् सूर्य के जनित्र को जानता हूँ और चन्द्रमा जहाँ से उत्पन्न हुआ है यह भी जानता हूँ (यजुर्वेद ११-६५-२३-६०)

आज आधुनिक विज्ञान भी वैदिक ऋषियों सी विनम्रता और अपनी अज्ञानता प्रदर्शित और स्वीकार करता हमारे सामने उपस्थित है। क्योंकि वह अपने लक्ष्य में असफल सिद्ध हुआ है। इसका लक्ष्य था सम्पूर्ण विश्व को व्याख्यायित करने के लिए एक नियम उपलब्ध कराना, किन्तु आधुनिक विज्ञान इस स्थिति में कैसे पहुँचा है और कहाँ से चलकर पहुँचा है, यह जानना बहुत ही मनोरंजक है। ३४० ई॰पू॰ ग्रीक दार्शनिक **अरिस्तातिल** ने अपनी पुस्तक 'ऑन द हीवेन्स' में भूकेन्द्रित विश्व का सिद्धान्त प्रतिपादित किया तथा **टालेमी** ने ईसा की द्वितीय शताब्दी में इस सिद्धान्त को परिष्कृत किया। यह सिद्धान्त बिना किसी प्रमाण और प्रयोग से पुष्ट हुए बेरोकटोक सोलहवीं शताब्दी की शुरुआत तक चलता रहा। सोलहवीं शताब्दी में **निकोलस कोपरनिकस** ने सूर्य केन्द्रित विश्व का सिद्धांत प्रतिपादित किया किन्तु वस्तुतः यह सिद्धांत न होकर एक धारणा थी, क्योंकि इसके पक्ष में तर्कों का प्रस्तुतीकरण नहीं था। लगभग सौ साल बीतते-बीतते यह धारणा गम्भीरता से ली गयी जब जर्मन खगोलविद **जोहान्स केप्लर** और **गैलीलियो गैलिली** ने इस धारणा को अपने परीक्षणों और प्रयोगों के आधार पर समर्थित किया। इस प्रकार ईस्वी सन् १६०९ में भूकेन्द्रित विश्व का सिद्धांत निरस्त हुआ तथा **गैलीलियो** के द्वारा विज्ञान को नयी दिशा प्रदान की गयी। वह नयी दिशा थी प्रयोगों और प्रमाणों द्वारा पुष्टि की दिशा। इसी सत्रहवीं शताब्दी में ही **आइजाक न्यूटन** द्वारा गुरुत्वाकर्षण के नियमों और सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया। यही से एक नये विज्ञान का जन्म हुआ जिसके परिशोधन से आज का आधुनिक विज्ञान जन्म लेता है। गैलीलियो के द्वारा विज्ञान को जो नयी दिशा दी गयी थी उसमें प्रयोगों-परीक्षणों और प्रमाणों द्वारा पुष्टि आवश्यक थी, उसी की अगली कड़ी के रूप में न्यूटन की अवधारणाएँ प्रतिपादित की गयीं। न्यूटन से लेकर उन्नीसवीं सदी के अन्त तक का काल शास्त्रीय भौतिकी का काल माना जाता है। शास्त्रीय भौतिकी की जो मूलभूत धारणा थी वह यह कि यह सम्पूर्ण जगत् पूर्णतया अवधार्य है। उन्नीसवीं शताब्दी के शुरूआत में फ्रेंच वैज्ञानिक **मार्किस डी लाप्लास** (Marquis-de-Laplace) ने सुझाव दिया कि इस संसार में कुछ वैज्ञानिक नियमों का वर्ग होगा जो कि इस संसार में होने वाली समस्त

भौतिक घटनाओं की भविष्यवाणी करने में हमारी मदद करेगा। भौतिकी के नियमों और सिद्धांतों की सफलता बहुत कुछ इस धारणा पर आधारित थी।

भौतिकी के विषय में यह ज्ञातव्य है कि भौतिकी का कोई भी सिद्धान्त तभी सही माना जाता है, यदि वह दो जरूरतों को पूरा करे। प्रथमतः यदि वह सिद्धांत एक बड़े पैमाने पर किये गये परीक्षणों और प्रयोगों की पूर्णतया व्याख्या करने में सफल हो और द्वितीयतः यदि वह सिद्धान्त ठीक-ठीक भविष्याकलन करने में सक्षम हो। इस कारण भौतिकी के सभी सिद्धांत हमेशा के लिए परिभाषित नहीं किये जा सकते हैं। जो कुछ हम किसी भी सिद्धांत की परिभाषा के स्थान में देते हैं वह एक कथन मात्र ही होता है। क्योंकि किसी भी सिद्धांत को सही माने जाने के लिए उसकी संगति बड़े पैमाने पर होनी आवश्यक है, किन्तु उसे गलत साबित करने के लिए सिर्फ एक जगह ही विसंगति होनी काफी है। इस प्रकार भौतिकी का कोई भी सिद्धांत एक परिकल्पना मात्र होता है जो कि कभी भी गलत सिद्ध हो सकता है। इसलिए भैतिकीविद् **स्टीफेन हाकिंग** कहते हैं 'कोई भी भौतिकी का सिद्धान्त इस विचार से हमेशा अस्थायी होता है क्योंकि वह एक परिकल्पना मात्र है, आप इसे कभी भी प्रमाणित नहीं कर सकते हैं। (अ ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम पृ॰ ११)

पहले यह माना जाता था कि प्रकाश सतत रूप से चलता है, तरंगों में चलता है। किन्तु सन् १९०० में **मैक्स प्लैंक** को कुछ परीक्षणों के दौरान इस मान्यता से असुविधा हो रही थी। वे प्रकाश के असमान वितरण की समस्या समाहित नहीं कर पा रहे थे। प्रकाश तरंगों के रूप में यदि चलता है तो उसे समान रूप में वितरित होना चाहिए। इस प्रकार प्रकाश को तरंगों के रूप में चलने की धारणा को स्वीकारने पर इस असमान वितरण की व्याख्या संभव नहीं हो रही थी, प्लैंक ने सोचा कि प्रकाश शायद क्वांटम में बण्डलों में चलता है और इस प्रकार उक्त समस्या को समाहित करने में कामयाब रहे। इसके बाद **आईस्टाइन** ने भी इसे पुष्ट किया।

न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत (Theory of Gravity) के साथ भी यही तो हुआ, गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्तों के अनुसार ग्रहों की गति आदि की समुचित व व्यवस्थित व्याख्या तथा भविष्याकलन हो रहा था, किन्तु बहुत सही-सही निरीक्षण करने पर बुध के विषय में यह अनुभव हुआ कि जैसा न्यूटनीय सिद्धान्त के आधार पर उसकी गति व स्थिति का भविष्याकलन किया जाता है, उससे थोड़ा सा अन्तर दृष्टि में आता है। इस प्रकार न्यूटनीय सिद्धान्त का परित्याग करना पड़ा और आईस्टाइन के सापेक्षिकता सिंद्धान्त (Theory of Relativity) को

स्वीकारना पड़ा। **आईस्टाइन** के भविष्याकलन बाद में निरीक्षण से संगत सिद्ध हुए और न्यूटन के नहीं, सो आईस्टाइन के सिद्धांत या परिकल्पना की पुष्टि हुई। बुध जो कि सूर्य का निकटतम ग्रह है, सूर्य के सबसे ज्यादा गुरुत्वाकर्षण को अनुभव करता है और उसका एक दीर्घवृत्तीय अनूठा परिपथ है। यह रहस्य सा था, आईस्टाइन ने इसकी व्याख्या की कि बुध के वृत्तीय परिधि का केन्द्र घूमता हुआ हो सकता है जिसकी दर एक डिग्री दस हजार वर्षों में है। यह प्रभाव अभी थोड़ा है, किन्तु सन् १९१५ में यह ध्यान में आया। इससे भी आईस्टाइन का सापेक्षिकता सिद्धांत पुष्ट हुआ।

आईस्टाइन के सापेक्षिकता सिद्धांत ने भौतिकी के क्षेत्र में कई प्रचलित मान्यताओं को उलट-पलट दिया। समय को इसके पूर्व में दिक् (Space) से अलग और निरपेक्ष माना जाता था, किन्तु आईस्टाइन ने सापेक्षिकता सिद्धांत के द्वारा यह बताया कि काल भी दिक् का ही एक आयाम है। हर व्यक्ति का अपना अलग-अलग काल का मापन होता है। आईस्टाइन के सापेक्षिकता सिद्धांत के मूल में यह बात है कि विज्ञान के नियम किसी भी स्वतन्त्र द्रष्टा के लिए समान हैं, भले ही द्रष्टा की गति कुछ भी हो। कोई भी द्रष्टा प्रकाश की गति को एक समान ही अनुभव करता है। इस एक साधारण सी धारणा ने अनेक सिद्धांतों को जन्म दिया। इसी धारणा ने यह भी सिद्धान्तित किया कि कुछ भी प्रकाश की गति से ज्यादा तेज नहीं चल सकता है। इस धारणा से ही आईस्टाइन का प्रसिद्ध समीकरण $\mathbf{E=MC^2}$ जन्म लेता है। E का अर्थ है ऊर्जा, M का अर्थ है मॉस-संहति), C का अर्थ है प्रकाश की गति। मॉस संहति को हम मोटे तौर पर भार ही मानते हैं, किन्तु भार और संहति में फर्क है। किसी वस्तु पर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण पड़ने वाले खिचाव को उसका भार कहा जाता है जो कि स्थान-स्थान पर गुरुत्वाकर्षण में परिवर्तन की वजह से बदलता रहता है। जैसे भूमध्यरेखा पर किसी वस्तु का जो भार होता है वही भार ध्रुवों पर नहीं होगा, उससे ज्यादा होगा क्योंकि ध्रुवों पर गुरुत्वाकर्षण ज्यादा होता है। संहति किसी पदार्थ द्वारा गति परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध को कहते हैं। धारणा यह है कि जो वस्तु जितनी तेजी से चलती है उस वस्तु में गति परिवर्तन के प्रति उतना ही प्रतिरोध बढ़ता है। इस प्रकार वेग से वस्तु की संहति बढ़ती है। जैसे यदि कोई वस्तु प्रकाश की गति के दस प्रतिशत गति से चले तो उस की संहति सामान्य से .५ प्रतिशत ज्यादा होगी, यदि कोई वस्तु प्रकाश की गति के ९० प्रतिशत गति से चले तो उसकी संहति उसकी सामान्य संहति से दो गुनी हो जायेगी। इसी प्रकार कोई वस्तु जब गति करती है तो उसी लम्बाई में कमी आती है। इस तरह

यदि कोई वस्तु प्रकाश की गति से चले तो उसकी संहति अपरिमित होगी और लम्बाई काल्पनिक। इसीलिए कोई वस्तु प्रकाश की गति से नहीं चल सकती है। सापेक्षिकता सिद्धान्त के अनुसार आईस्टाइन ने कहा है कि वस्तु की संहति वेगानुसार परिवर्तित होती रहती है, शास्त्रीय भौतिकी में उसे अपरिवर्तनीय माना जाता है। ग्रहों आदि की गति के विषय में आईस्टाइन का कथन तो बड़ा मौलिक, अनूठा और आश्चर्यजनक है। ये ग्रह गोलाकार या वृत्ताकार नहीं चलते बल्कि वे सीधे रास्ते से एक वक्र दिक् में चलते हैं। जैसे यदि हम गेंद पर सीधी रेखा खींचने का प्रयास करें तो वह वक्र हो जायेगी, गोल हो जायेगी। उसी प्रकार दिक् की वक्रता की वजह से इन सभी ग्रहों का परिक्रमापथ वक्र है, वृत्ताकार है। दिक् की वक्रता का आशय है कि प्रकाश दूर तक सीधे रास्ते पर दिक् में नहीं चल सकता है। इसका निहितार्थ यह भी है कि गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र का प्रभाव केवल ग्रहों आदि पर ही नहीं होता है बल्कि प्रकाश पर भी हुआ करता है। जो कि न्यूटनीय भौतिकी तक नहीं माना जाता था। इस मायने में आईस्टाइन की सापेक्षिकता की अवधारणा न्यूटनीय अवधारणा का ही विस्तार है। सापेक्षिकता में दिक्काल पृथ्वी के सतह के समान ही हैं, अन्तर बस इतना है कि पृथ्वी की सतह द्विआयामी है और दिक्काल के चार आयाम हैं। इसको इस तरह से समझा जा सकता है कि पृथ्वी पर किसी स्थल के विषय में बतलाने के लिए आपको सिर्फ दो चीजों की आवश्यकता होती है। अक्षांश रेखा और देशांतर रेखा के द्वारा किसी वस्तु की विशेष स्थल में स्थिति आप बता सकते हैं। किन्तु अन्तरिक्ष में अवस्थित किसी वस्तु, ग्रह, तारे आदि की स्थिति बताने के लिए आपको तीन चीजों की जरूरत पड़ती है। जैसे कमरे में फर्श से ऊपर अन्तरिक्ष में स्थित किसी वस्तु की स्थिति बताने के लिए तीन चीजों का वर्णन आवश्यक होगा, यथा–चार फुट एक दीवार से, तीन फुट दूसरी से और दो फुट जमीन से ऊपर। इसमें एक समय का आयाम और जोड़ दिया है। इस तरह इस चार आयाम वाले वक्रदिक् काल में प्रकाश भी वक्र चलता है। इस धारणा का निष्कर्ष यह भी है कि जो ब्रह्माण्ड हमें आज दिख रहा है यह ब्रह्माण्ड आज ऐसा है नहीं, क्योंकि बहुत सी आकाशगंगाओं और तारों से प्रकाश हमतक पहुँचने में ही हजारों वर्ष लग जाते हैं। ऐसी स्थिति में वे हमें आज जैसे दिखते हैं, वे ऐसे हजारों वर्ष पहले थे। आज वे यदि नष्ट हो जायें तो, हमें यह एक हजार वर्षों के बाद ज्ञान हो सकेगा।

किन्तु इस सापेक्षिक अवधारणा की समस्या यह है कि यह बिगबैंग की अवस्था में खुद अपने ही पतन की घोषणा कर देती है। सन् १९२९ में खगोल वैज्ञानिक **हबले** ने अपने सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर प्रतिपादित किया कि यह ब्रह्माण्ड फैल रहा है। आकाश गंगायें एक दूसरे से अत्यन्त तीव्र गति से विसर्पित

हो रही हैं, उनके बीच की दूरियाँ अत्यन्त तीव्र गति से बढ़ रहीं हैं। हबले के पूर्व ही रूसी वैज्ञानिक **अलेक्जेंडर फ्रीडमान** ने सन् १९२२ में ही सापेक्षिकता सिद्धान्त पर आधारित अपने आकलन से विश्व की सतत विस्तारित अवस्था की घोषणा कर दी थी, हबले के द्वारा उसकी पुष्टि कर दी गयी। सापेक्षिकता सिद्धान्त के अनुसार यदि यह विश्व अभी विस्तारित हो रहा है तो निश्चित रूप से इसके सापेक्ष पूर्व में अत्यन्त सम्पीडित, संकुचित अवस्था में रहा होगा। इस प्रकार स्थिति यह आती है कि यदि सापेक्षिकता की अवधारणा सही है तो कोई एक विशिष्ट अवस्था एक बिगबैंग अवश्य होना चाहिए, जिससे कि विश्व का विस्तारण प्रारम्भ हुआ है। इसके साथ यह भी इसके सापेक्ष निष्कर्ष निकलता है कि विश्व के अत्यन्त विस्तारण के उपरान्त उसके संकुचन की अवस्था भी होगी और संकुचन के क्रम में संकुचित विश्व पुनः एक विशिष्ट अवस्था को प्राप्त कर लेगा ऐसा भौतिकी **विद् बिंगक्रंच** कहते हैं। इस प्रकार यह सापेक्षिकता की अवधारणा इन दोनों ही अवस्थाओं में अपने सहित भौतिकी के समस्त नियमों के पतन की घोषणा कर देती है। इसलिए यह अवधारणा अपने आप में अधूरी है। इसी कारण यह नियम यह नहीं बता सकता है कि यह ब्रह्माण्ड कैसे प्रारम्भ हुआ? यह अवधारणा यह तो बता सकती है कि विश्व इस समय कैसे चल रहा है। यह भी बताती है कि यह ब्रह्माण्ड कैसे शुरू हुआ और इसका कैसे अन्त होगा? इसीलिए **स्टीफेन हाकिन्ग** कहते हैं कि 'एक विशिष्ट अवस्था में सामान्य सापेक्षिकता और सभी अन्य भी भौतिकी के नियम टूट जाते हैं, कोई भी यह आकलन नहीं कर सकता है कि उस विशिष्ट अवस्था से क्या बाहर आयेगा' (अ बीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम पृ॰ १२८)।

इसके समानान्तर ही **वार्नर हाइजेनवर्ग**, **इरविन श्रॉडिंजर** और **पाल डिराक्** ने मैक्स प्लैंक द्वारा आविष्कृत क्वांटम की अवधारणा को परिष्कृत किया, जिसे क्वांटम् मेकैनिक्स कहा जाता है। यह क्वांटम मेकैनिक्स वार्नर हाइजेनबर्ग के अनिश्चितता के सिद्धान्त पर मूलतः आश्रित है। इस अवधारणा के अनुसार कण बहुत अलग नहीं हैं, उनकी भली प्रकार परिभाषित स्थिति और वेग नहीं है तथा वे देखे नहीं जा सकते हैं। वस्तुतः यह मैक्स प्लैंक की अवधारणा की स्वाभाविक परिणति है। मैक्स प्लैंक ने जो अवधारणा प्रस्तुत की थी उसके अनुसार-यद्यपि प्रकाश तरंगों के रूप में है किन्तु कुछ बार यह इकट्ठे किये गये कर्णों जैसा व्यवहार करता है। इस प्रकार प्रकाश तरंगे किसी मनमाने मात्रा में उत्सर्जित या अवशोषित नहीं होती हैं अपितु एक निश्चित मात्रा में बंडलों में उत्सर्जित या अवशोषित होती हैं। भविष्य में किसी कण की स्थिति और वेग का आकलन करने के लिए आवश्यक है कि आप वर्तमान में उस कण की स्थिति

और वेग को सही-सही जानें। इसके लिए कण को प्रकाशित करना आवश्यक होगा और आपको इसके लिए कम-से-कम कए क्वान्टा (एक बंडल) प्रकाश का उपयोग करना ही पड़ेगा। यह मात्रा उस कण को आन्दोलित कर देगी तथा उसकी स्थिति और वेग परिवर्तित हो जायेगा। इस परिवर्तन को किसी तरह भी आकलित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार यह सैद्धान्तिक रूप से सामने आता है कि आप किसी भी कण की (और इसी वजह से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड क्योंकि ब्रह्माण्ड भी तो अनन्त कणों से ही बना है) स्थिति और वेग एकदम सही सही नहीं जान सकते हैं। यदि एक का भली प्रकार ज्ञान हुआ तो दूसरे का उससे कम ही ज्ञान हो सकेगा।

क्वांटम मेकैनिक्स किसी निरीक्षण के किसी एक निश्चित परिणाम का भविष्यकथन नहीं करता है, बल्कि उसकी जगह पर कुछ एक संख्याओं में परिणाम की सम्भाव्यता को बतलाता है। किसी बड़े पैमाने पर परीक्षण करने पर एक ही परिणाम हमेशा नहीं निकलेगा बल्कि कुछ में परिणाम 'क' तो कुछ में 'ख' निकलेगा, जैसे सिक्का उछालने पर उसके चित या पट गिरने की सम्भावना बराबर रहती है, जिसका भविष्य कथन कोई भी कर सकता है। उसी प्रकार जितनी सम्भावनाएं हो सकती हैं, उन सबके विषय में क्वान्टम मेकैनिक्स भवष्यिकथन करता है। इस प्रकार क्वांटम मेकैनिक्स विज्ञान में एक अननुमेयता और एक संयोग के तत्त्व की उपस्थिति बताता है, जो कि अपरिहार्य है। प्लैंक अवधारणा के अनुसार जैसे प्रकाश तरंगों में होते हुए भी कणों के बंडल जैसा बर्ताव करते हैं। इस अवधारणा ने बहुत लम्बे समय से चली आ रही एक समस्या को समाहित कर दिया। जिस प्रकार ग्रह तारों की परिक्रमा करते हैं। उसी प्रकार इलेक्ट्रान अपने केन्द्र की परिक्रमा करते हैं। किन्तु जिस तरह तारों में गुरुत्वाकर्षण होता है, उसी तरह परमाणु केन्द्र में गुरुत्वाकर्षण नहीं होता है। परमाणुकेन्द्र धनात्मक और इलेक्ट्रान ऋणात्मक विद्युत आवेश से युक्त हैं। इसलिए इलेक्ट्रान केन्द्र की परिक्रमा करते हैं। किन्तु इसमें समस्या यह थी कि इस प्रकार तो कभी-न-कभी इलेक्ट्रानों को केन्द्र में गिर जाना चाहिए, क्योंकि विद्युत यांत्रिकी के नियमों के अनुसार गति करने से इलेक्ट्रान की ऊर्जा का क्षय होगा और फिर केन्द्र के आकर्षण की वजह से वे केन्द्र में जा गिरेंगे। इसका समाधान क्वांटम मैकैनिक्स ने यह कह कर दिया कि, चूंकि इलेक्ट्रान तरंगों के रूप में चलते हैं, इसलिए वे अपने वेग से ही पुनः वेग हासिल करते रहते हैं, उनकी ऊर्जा का क्षय नहीं होता है। इस प्रकार क्वांटम मेकैनिक्स अनेक समस्याओं को समाहित करने में सफल रहा। किन्तु इसके लिए मूल्य क्या चुकाया गया है, देखना मनोरंजक है।

शास्त्रीय भौतिकी की जो धारणा थी कि सभी परिघटनाओं को समीकरणों की शर्तों पर व्याख्यायित और आकलित किया जा सकता है, वह खण्डित हो गयी, क्योंकि ब्रह्माण्ड में कुछ ऐसा है जो अवधार्य नहीं है, अनुमेय नहीं है। शुरू में यह माना जाता था कि परमाणुओं से यह ब्रह्माण्ड बना है, परमाणुओं को मूलभूत तत्त्वो के रूप में जाना जाता था। वे आज खण्डित कर दिये गये हैं और आज हमारे सामने जो तत्त्व मूल तत्त्वों के रूप में हैं– इलेक्ट्रान और क्वार्क, वह प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं हैं और वस्तुतः उस अर्थ में तात्त्विक नहीं हैं जिस प्रकार पेड़ पौधे आदि। **हाइजेनबर्ग** कहते हैं 'क्वांटम अवधारणा के प्रकाश में ..... मूलभूत तत्त्व उस अर्थ में दूर तक तात्त्विक नहीं है जिस अर्थ में दैनिक जीवन की चीजें तात्त्विक हैं, जैसे वृक्ष या पत्थर (उद्धृत-डांसिंग वू ली मास्टर्स पृ॰ २१६)। ऐसा इसलिए है क्योंकि ये तरंगों के रूप में हैं। **स्टीफेन हाकिंग** कहते हैं कि 'हम यह अपेक्षा कर सकते हैं कि जिन्हें हम आज मूलभूत तत्त्व मानते हैं, हो सकता है आगे इन इलेक्ट्रान और क्वार्क से भी मौलिक कुछ और संरचना परतों को ढूंढ लें' (आ ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम, पृ॰ १७७)। इस प्रकार वस्तुतः हमारे पास कोई भी मूलभूत पदार्थ शेष नहीं बचता है। विज्ञान कोई एक अवधारणा नहीं सुलभ करा सका है जो इससे अपेक्षा थी, जिसके आधार पर समग्र विश्व को व्याख्यायित किया जा सके। उसने कई छोटे-छोटे नियम हमें उपलब्ध कराये हैं जो आपस में ही एक दूसरे की सहायता नहीं करते हैं। ऐसा लगता है जैसे कृष्ण को बांधने के लिए यशोदा रस्सी ला रही हैं और हर रस्सी छोटी पड़ जा रही है।

वस्तुतः आज विज्ञान तमाम चिन्तन, तमाम निरीक्षणों-परीक्षणों के उपरान्त उस मोड़ पर आकर खड़ा हुआ है जिस मोड़ से भारतीय दर्शन परम्परा में अद्वैतवादियों और शून्यवादियों में शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ था। आप चाहें तो यह मान सकते हैं असत् से सत् की उत्पत्ति हुई है, चाहें तो यह मान सकते हैं कि समस्त विश्व ही ब्रह्म है और सत् है, उसी सत् से सत् की उत्पत्ति हुई है। **नासदीय-सूक्त** में 'न सत् था न असत् था', कहने का आशय यही है कि उस तत्व को सत् कहना भी मुश्किल है क्योंकि उसकी प्रतीति सम्भव नहीं है, असत् कहना भी मुश्किल है क्योंकि वह है।

क्या ये वही विचारधारा और वही मार्ग नहीं हैं जिस मार्ग का अन्वेषण वैदिक ऋषियों ने सूक्तों और उपनिषदों में किया है? क्या वैदिक विश्व दृष्टि भी इन्हीं प्रश्नों पर नहीं विचार करती रही है? आज भौतिक विज्ञानी इस तरफ भी विचार करते हुए वैदिक विश्व दृष्टि को ही सत्यापित करते हैं। **इरविन**

श्रॉडिंजर इसके लिए उपनिषदों की ओर देखते हुए दिखायी पड़ते हैं। (माई वर्ल्ड व्यू ऑफ दा वर्ल्ड, चैप्टर-४)। **रोजर एस. जोंस** कहते हैं कि 'मेरे लिए, यह सब कुछ पूर्व के इस विचार से सम्बद्ध है, जिसके अनुसार यह ब्रह्माण्ड एक सीमारहित एकता है, एक है जो अपने आप में ही अन्तर्विष्ट है' (भूमिका, फिजिक्स ऐज मेयकर)। यह ऋग्वेद के उस कथन– 'एक ही सद् है जिसे विप्र बहुत तरीके से कहते हैं' का पुनः कथन है। वैदिक साहित्य में भी यह विचार बार-बार आता है कि यह विश्व सत् से हुआ या असत् से!, कही सत् से हुआ और कहीं असत् से इस तरह के विचार मिलते हैं। किन्तु **छान्दोग्योपनिषद्** में सुस्पष्टतः सत् से ही सत् की उत्पत्ति बतलाते हैं तथा प्रश्न उठाते हैं कि आखिर असत् से सत् कैसे उत्पन्न हो सकता है? (छान्दोग्य ६-२-१,२)।

कण-तरंग द्वैधता पर भौतिक विज्ञानी चिन्तित हो सकते हैं। आखिर प्रकाश कैसे तरंग रूप होते हुए कण जैसा व्यवहार कर सकता है? कण कैसे तरंगवत् व्यवहार कर सकता है? किन्तु 'रूपं रूपं मधवा बोभवीति' इस वैदिक चिन्तन का आधार जिसके पास हो उसे इस पर कोई आश्चर्य नहीं होता है। एक वही सत् कभी तरंग के रूप में कभी कण के रूप में व्यवहार करता है, अपने को दर्शाता है। यह उसकी महिमा ही है।

हाईजेनवर्ग का अनिश्चितता के सिद्धान्त को मापने के साधनों की सीमा का ही निदर्शन नहीं है बल्कि मानव प्रजाति के ज्ञान की सीमा का भी निदर्शन है। इसी कारण वैदिक साहित्य में हम नेति नेति के रूप में उस परमसत्ता का वर्णन प्राप्त करते हैं। **पुरुष सूक्त में** जब ऋषि कहते हैं 'वह पुरुष त्रिपात् ऊर्ध्व है, उसका पाद ही यहाँ पर सृष्टि के रूप में उत्पन्न हुआ है' तो वह यही संकेतित कर रहे होते हैं कि दृश्यमान् जगत् उस चेतन सत्ता का अंश मात्र है। जो ज्ञात है अज्ञात उससे कहीं बहुत ज्यादा है। आज भौतिक विज्ञानी अनेक ब्रह्माण्डों की भी बात करते हैं और उसकी सम्भावना से इनकार नहीं करते हैं। इतनी सुविधा सम्पन्न होने पर भी हमारी दृष्टि सीमा से बाहर भी अनेक आकाश गंगाएं हैं। भौतिक विज्ञान आज हमें बता रहा है कि चेतना और शरीर दोनों एक हैं। क्या समस्त विश्व सच्चिदानन्दात्मक बताते हुए वैदिक दृष्टि ने यही कार्य नहीं किया था? आज जब भौतिक विज्ञानी बिगबैंग और बिगक्रंच अवस्थाओं की बात कर रहे हैं तो क्या ऐसा नहीं लगता है कि कोई ऐसी ही बात शायद शब्दान्तर से **मुण्डकोपनिषद्** में कही गयी है? जहाँ पर कहा गया है कि 'जैसे ऊर्णनाभ सृजन करता है और पुनः ग्रहण कर लेता है.....उसी प्रकार अक्षर से यह विश्व उत्पन्न होता है' (मुण्डकोपनिषद् १-७)। आखिर भौतिक विज्ञानी भी बिगबैंग से

सृष्टि का विस्तार और बिगक्रंच में सृष्टि की लीनता ही तो स्वीकार करते हैं। यहाँ पर मैं अपनी बात समाप्त करना चाहूँगा। **विल ड्यूरां** ने कहा है कि "विज्ञान हमें जानकारी देता है किन्तु सिर्फ दर्शन ही हमें प्रज्ञा प्रदान करता है" (द स्टोरी ऑफ फिलासफी भूमिका पृ॰ xxvii)। इस तरह विज्ञान दर्शन के बिना अधूरा है और विज्ञान को पूर्णता प्रदान करने वाला दर्शन वैदिक औपनिषदिक दर्शन ही है। विज्ञान का मार्ग भी दूसरा नहीं है।

---

1. The eventual goal of science is to provide a single theory that describes the whole universe. (A Brief history to time p. -11)

१. ऋग्वेद
२. यजुर्वेद
३. अथर्ववेद
४. तैत्तिरीय ब्राह्मण
५. छान्दोग्योपनिषद्
६. तैत्तिरीयोपनिषद्
७. केनोपनिषद्
८. मुण्डकोपनिषद्
९. श्वेताश्वतरोपनिषद्
१०. भारतीय दर्शनः डॉ॰ राधाकृष्णन् अनु॰ नन्द किशोर गोभिल राजपाल एण्ड संस।
११. द स्टोरी ऑफ फिलासफी : विल ड्यूरां।
१२. माई वर्ल्ड व्यू ऑफ द वर्ल्ड : इरविन श्रॉडिंजर, कैम्ब्रिज यूनि, प्रेस लंदन १९६४।
१३. फिजिक्स ऐज मेटाफर : रोजर एस.जोंस, वाइल्ड वुड हाउस लंदन १९८३।
१४. द डांसिंग वू ली मास्टर्स : गैरी जुकाव न्यूयॉर्क १९७९।
१५. अ ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम : स्टीफेन हाकिंग बैंटम प्रेस ग्रेट ब्रिटेन पुनः प्रकाशन १९९७।